प्रवासी हिन्दी लेखिकाओं की कथा संवेदना का अनुशीलन

डॉ० शांति भूषण
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया, बिहार

भारत की सरहद के पार सारी दुनिया में भारतवंशियों का न सिर्फ फैलाव है बल्कि उनका राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक बोलबाला है। इस महत्वपूर्ण जनसंख्या का एक विशिष्ट हिस्सा उन हिन्दी लेखिकाओं का है जो प्रवासी हिन्दी साहित्य में अपनी जगह पुख्ता करने में कामयाब हुई है। इनमें से अधिकांशतः साहित्य अध्ययन-अध्यापन-लेखन की पृष्ठभूमि से आती हैं तो कुछ विभिन्न पेशेवर-व्यावसायिक-कामकाजी क्षत्रों से। हिन्दी को अपनी अभिव्यक्ति की भाषा बनाकर इन्होंने हिन्दी साहित्य की तमाम विधाओं में सृजन किया है। प्रवासी हिन्दी लेखिकाओं की विषय-विविधता इन्हें मुख्यधारा के लेखकों की श्रेणी में शुमार कर देती है। इनके लेख में परिवेश, स्थितियों, मनःस्थितियों, घटनाओं, पात्रों एवं संवादों के माध्यम से अतीत की स्मृतियों, अस्मिता के सवालों, जटिल दाम्पत्य-संबंधी, सभ्यता एवं संस्कृति के अंतर्द्वंद्वों, मिथकों, इतिहासों, पीढ़ियों के संघर्षों-अलगावों, जीवन-मूल्यों, यांत्रिक जीवन-प्रणालियों, प्रवासन की प्रक्रियाओं आदि की बारीक बुनावट मिलती है। इन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, मॉरिशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद आदि देशों के प्रवासियों की अमूर्त भाव-संवेदनाओं को मूर्त किया है। कथाकार कमलेश्वर ने प्रवासी हिन्दी साहित्य पर टिप्पणी करते हुए सही ही कहा था कि, ''रचना अपने मानदंड खुद तय करती है इसलिए उसके मानदंड बनाए नहीं जाएंगे। उन रचनाओं के मानदंड तय होंगे।''[1] बहरहाल विदेशी भूमि पर रहते हुए प्रवासी हिन्दी लेखिकाओं ने अपनी सृजन-यात्रा में जिस भारतीयता की बुनावट का उपक्रम किया है उसकी पहचान और पड़ताल आवश्यक है।

कथ्य एवं सरोकारों की व्यापकता की दृष्टि से प्रवासी हिन्दी लेखिकाओं में कथाकारों की भूमिका विशिष्ट है। प्रवासी हिन्दी लेखिकाओं की कहानियाँ 'एक नई दुनिया' का आकार-प्रकार यथेष्ट अनुपात में प्रस्तुत करती हैं। प्रोफेसर फ्रंचेस्टा ऑर्सीनी के अनुसार, ''इनको पढ़ना दुनिया में बसे हुए हिन्दी बोलने और लिखनेवालों की दुनिया में प्रवेश-सा करना है, उनकी सोच और मानसिकता से वाकिफ होना है।''[2]

उषा राजे सक्सेना की कहानी 'सलीना तो सिर्फ शादी करना चाहती थी!' मैं फैक्ट्री में काम करने वाला तकरीबन हरेक शख्स कानूनन अवैध नागरिक और भगोड़ा है। लन्दन जैसे मल्टीकल्चरल और मेट्रोपोलिटन सिटी की चमक-दमक के तले कुछ ऐसे अड्डे भी हैं जिनके अँधेरे भयभीत कर देने वाले हैं। एक आम लड़की और लड़का सलीना और बुखारी के दाम्पत्य-सूत्र में बंधने का सपना यथार्थ से टकराकर चकनाचूर हो जाता है। कहनी में अस्पताल के परिवेश और काले कारनामों की प्रक्रिया का वस्तुनिष्ठ और यथार्थवादी वर्णन भयभीत कर देने वाला है-''कमरे का फर्श लकड़ी का बना हुआ था। एक ओर स्टील का एक टेम्परेरी-सा ऑपरेशन टेबुल पड़ा हुआ था जिस पर प्लास्टिक की एक पारदर्शी चादर पड़ी हुई थी। ऑपरेशन टेबुल के पास रखे छोटे-से टेबुल पर एक पोर्टेबुल 'स्टेब्लाइजर' और कुछ 'सर्जिकल टूल्स' एक पारदर्शी चौकोर बक्से में सजाकर रखे हुए थे। कमरे के दाहिने कोने में एक छोटा-सा वाश-बेसिन लगा हुआ था। उसके ऊपर 'वाशिंग अप लिक्विड' और 'किम्बरले' का 'टॉवल रोल' लगा हुआ था। कमरे के बाएँ कोने में एक लकड़ी की टेबुल पड़ी हुई थी जिसके एक तरफ एक रिवॉल्विंग हत्थेवाली कुर्सी थी और दसरी तरफ मरीजों के बैठने के लिए दो गद्दीदार कुर्सियाँ रखी हुई थीं ..... ड्राअर बंद करके डॉक्टर ने थोड़े से शब्दों में सलीना को ओवरी में से अंडा निकालने की संक्षिप्त 'रिस्क-फ्री' प्रक्रिया बताई और साथ ही उसने कहा कि आज वह उसका 'गायनाकोलॉजिकल टेस्ट' के लिए रक्त लेगा।''3 अस्पतालों द्वारा सलीना और बुखारी की क्रमशः ओवरी

और किडनी का 'सौदा' कर लेना वैश्विक स्तर पर गिर चुकी स्वास्थ्य व्यवस्था के प्रति आगाह कर देता है।

अनिल प्रभा कुमार की कहानी 'दीवाली की शाम' प्रवासी भारतीयों की नब्ज़ टटोल लेती है। आर्थिक समृद्धि के बावजूद मन में उष्मा और उत्साह गायब है। दीवाली जैसे धूम-धाम वाले त्योहार पर भी परिवार के सदस्यों को एक-दूसरे की प्रतीक्षा नहीं रहती। सभी ठहरी हुई जिंदगी ठेल रहे होते हैं। परिवार के पास सबकुछ है-ऊँची डिग्रियाँ, ताजमहलनुमा भव्य घर, बड़ी गाड़ियाँ, ढेर सारे सामान और मोटी चेक-बुक मगर घर के लोग उदास और बेजान हैं। मायादास और लक्ष्मी के बच्चों के शादी ना करने, शादी ना होने या शादी असफल हो जाने, बहु के कोंख न भरने के कारण चुप्पी, उदासी निराशा और अवसाद के वातावरण में सबके मन में एक खामोश चीख फूट रही है, ''दोनों पति-पत्नी वहीं टिमटिमाते दीयों काँपती रोशनी में चुपचाप बैठे रहे.....मोम के दीयों की लौ चटखने लगी थी। अपनी आवाज के इस अजनबी खोखलेपन से वह खुद ही घबरा गए। लक्ष्मी मुँह बाए उनकी ओर देखती रही।''[4] परिवार के सभी सदस्य अमावस्था की कालिमा को जीवन संबंधों में महसूस करने के लिए अभिशप्त है।

जाकिया जुबैरी की कहानी 'साँकल' स्त्री मन की उधेड़बुन को चित्रित करती है। माँ और पुत्र के संबंधों में आए तनाव को संवेदनशीलता से उकेरा गया है। बचपन में समीर माँ की आँखों से बहते हुए आँसू देखकर बेचैन हो उठता था। उनके मुँह में धनिये का बीज दाल देता कि आँसू रुक जाएंगे। बड़ा होकर समीर अपने पिता के पदचिह्नों पर चलते हुए माँ से आक्रामक, अशोभनीय ओर मर्यादाविहीन व्यवहार करने लगता है। इतना कि माँ का मन करह उठता है, ''क्या उसने अपने गिरने की कोई सीमा तय नहीं कर रखी?''[5] बेटे की बजदुबानी और दुर्व्यवहार से आहत माँ की व्यथा इन शब्दों में महसूसू की जा सकती है, ''भला कौन अपनी माँ को छिनाल कह सकता है..... अपने यारों के साथ घूमती है..... क्या फर्क रह गया पति और बेटे में ..... वो भी तो अपनी कमजोरियाँ छुपाने के लिए यही इल्जाम लगाता रहा है.... .....समीर की जबान की कटुता की चोट जितनी गहरी लगी थी, उतना तो बाजुओं पर पड़े नील के निशान का दर्द भी नहीं चुभ रहा था.....अपनी जवानी का एक-एक क्षण. .....एक-एक कतरा.....इकलौते बेटे के नाम लिख दिया था..... सोचती थी कि बाप के वक्त की भरपाई भी वह ही करेगा.....आज इस उम्र में.....माँ पर इतना बड़ा आरोप।''6 घर में पुलिस बुलाए जाने से अपमानित हुए बेटे की नजरों में शत्रुता.....नफरत.....या अन्य भावों को महसूस करती माँ के दिल का डर उसे रात में सोने नहीं देता। वह बिस्तर पर अकेले लेटे करवटें बदलती है और एकाएक बिस्तर से उठकर भीतर से कमरे की साँकट चढ़ा देती है। कहानी माँ के द्वंद्व को, उसके स्वाभिमान और डर को पूरी संवेदनशीलता से अभिव्यक्त करती है। यहाँ साँकल दोनों का एक-दूसरे के प्रति है। कमरे के बजाय मन में।

सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'कमरा नंबर 103' यथार्थ की ज़मीन पर खड़ी दिखती है। मिसेज वर्मा परदेश में एकदम अकेली हो जाती हैं क्योंकि बेटा-बहु उन्हें घर में लगे जाले की तरह उतार फेकते हैं, देश का घर तो पति की मृत्यु के बाद उनका बेटा पहले ही बिकवा चुका होता है। उनके जीवन का उद्धेश्य समाप्त-सा हो जाता है। स्वाभिमान मर-सा जाता है। अस्पताल में पड़े-पड़े स्थानीय दो नर्सों की बातों का उनपर सकारात्मक असर होता है, ''माँ-बाप इतना शोषण सहते क्यों हैं.....यह भी तो हो सकता है, वे उसे शोषण नहीं, बच्चों के प्रति अपना कर्तव्य समझते हों, साउथ-एशियन्स का कल्चर और सोच हम लोगों से भिन्न है.....ऐसा व्यवहार तो अमानवीय है, कोई कल्चर इसे प्रोत्साति नहीं करता।''[7] उनके भीतर स्वाभिमान का भाव जी उठता है। अपनों की ठोकरों और शोषण को न सहने की इच्छा बलवती हो उठती है और उनकी निर्णय-शक्ति उनमें नव-जीवन का प्रति-स्फूटन करती है।

पूर्णिमा वर्मन की कहानी 'नमस्ते कॉर्निश' विदेशी ध रती पर अपनों के बेगाने होने और बेगानों को अपना बनाने की विवशता या विडंबना-बोध से परिचय कराती है। योगिनी महाजन का अहले सुबह समुद्र के किराने कॉर्निश बीय पर सैर करते हुए प्रकृति, स्थानीय भौतिक समृद्धि, देश-परदेश की सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति का बारीक तुलनात्मक विश्लेषण करना और बीच पर रोज मिलने वाले लोगों, जिन्हें वह कल्पित नामों से जानती हैं, को देखकर आत्मालाप करना उनकी अपनी मनःस्थिति का यथार्थ प्रकट कर देता है। बीच पर सैर करते हुए रोज दिखने वाले

हशमत अंकल जब एक-एक करते दस रोज से नहीं मिलते तो योगिनी महाजन जिंदगी और मौत के अर्थ खोजने लगती हैं, ''जब जिंदगी की शाम उतरने लगती है तब मौसम की सुबह का मर्म ज्यादा समय में आता है।''[8] हशमत अंकल के नहीं दिखने पर योगिनी महाजन का आत्मालाप है, ''अब आप सोचेंगे कि अगर हशमत अंकल नहीं मिले तो किसी से पूछना था। अड़ोस-पड़ोस से..... उनको देखकर हाथ हिलाने वाले दूसरे लोगों से.....नारंगी वर्दी वाले हारिस और नासिर से.....फिलिपीन मूल के जैकब से.....कॉर्निश के माली हाशिम और नजीर से..... श्रीलंका के जयंतन से.....नारायणन योगा टीचर से.....वे सब उन्हें देखकर हाथ हिलाते थे, वे तो अभी भी आते हैं. ....लेकिन योगिनी महाजन किसी से कुछ भी पूछ नहीं सकती हैं। वे नहीं जानती कि हशमत अंकल कौन थे, दरअसल वे तो हशमत अंकल का नाम भी नहीं जानती, उनका नाम हशमत अंकल है ही नहीं। यह नाम तो उन्होंने अपने लिए रखा था मन-ही-मन.....कभी बुलाया नहीं उनको इस नाम से। हशमत अंकल को क्या मालूम कि योगिनी महाजन ने उनका नाम हशमत अंकल रखा है..... जब कभी उनसे योगिनी महाजन की बात ही नहीं हुई तो वे कैसे जान सकती हैं कि उनका नाम क्या था.....हशकत अंकल नाम तो बस ऐसे ही रख दिया, ऐसे ही.....शायद दिनचर्या के किसी खाली समय में दोहराने के लिए..... ठीक वैसे ही जैसे नासिर और हारिस का नाम वे नहीं जानती हैं, वे फिलीपीनी जैकब का नाम भी नहीं जानती हैं। पता नहीं उन लोगों को क्या नाम हैं.....ये नाम तो योगिनी महाजन ने अपने मन से रखे हैं किसी खास मतलब से नहीं। पहले कहा न बस ऐसे ही किसी खाली पल में दोहराने के लिए.....वे केवल योगा गुरु नारायणन का नाम जानती हैं क्योंकि वे अखबार के साप्ताहिक संस्करण में कॉलम लिखते हैं। जहाँ उनका नाम और फोटो होती है। वे सड़क का नाम जानती हैं क्योंकि वह लिखा होता है। लोगों के नाम तो कही लिखे नहीं होते, उन्हें पूछना पड़ता है। भारत की तरह हर किसी से बात करने या कुछ भी पूछने का रिवाज़ यहाँ नहीं है।''[9] उम्र के जिस पड़ाव पर योगिनी महाजन जी रही हैं, वह भी विदेशी ध रती पर, उसमें मृत्यु-बोध उनमें अजनबीपन, अकेलापन और अवसाद उत्पन्न कर देता है। कहानी समाप्त होती है सवालों से, ''कैसा प्यार और कैसा साथ ? कौन किसके साथ है.....कितने दिन साथ रहेगा.....कब चला जाएगा..... कुछ पता नहीं.....प्यार क्या है.....रिश्ते क्या हैं.....नाम क्या हैं.....किसी चीज का कोई मतलब नहीं है योगिनी महाजन के लिए.....सब कुछ खत्म हो जाना है.....सब कुछ, जिसके साथ प्यार है.....या नहीं भी है.....क्या अपने.....क्या पराए. ....किस बहाने से कब चले जाएंगे कुछ पता नहीं। लोगों का दूर चले जाना....पंचतत्वों में विलीन हो जाना ही अंतिम सत्य है जीवन का। वे निर्लिप्त भाव से कार में जा बैठी हैं। बाहर संगी का शोर है और भीतर गुलमोहर की पाँच पंखुरियाँ बिखरी पड़ी है। जैसे जीवन के पंचतत्व बिखर गए हैं और अब जुड नहीं पाएंगे। खिड़की का शीशा नीचे कर वे बाहर समंदर की ओर देखती हैं.....नीला आकाश. .....हरा समंदर.....खूब गहरा, खूब गहरा उनके मन की तरह सब कुछ समा लेने वाला....आँखें नम-सी हो आई हैं।[10]

जया वर्मा की कहानी 'सात कदम' आस्था, पवित्रता और समर्पण की कहानी है। सूचनात्मक विवरण देने की अतिशयता के बावजूद पर्यटन स्थल विवरण और प्रकृति चित्रण इस कहानी की उल्लेखनीय विशिष्टता है, ''लिसबन, पुर्तगाल में सुबह का सूरज अपनी भव्य सुनहरी किरणों के साथ उदय हुआ। क्षितिज के फैले लाल रंग देखकर वास्कोडिगामा के देश को नमन किया। चार-पाँच घंटे शहर में घूमें फिर शिप जिबराल्टर के लिए रवाना हो गया। जिबरालटर चट्टान अपने आप में एक अद्‌भुत अूजबा है। मिनोर्का और कोर्सिया आईलैंड होते हुए फ्रांस पहुँच गए जहाँ उन्होंने समस्त दिन व्यतीत किया। फ्रांस की विश्वविख्यात सभ्यता और संस्कृति के विकास से प्रभावित होकर उन्होंने आगे की यात्रा मेडिटरेनिअन सागर में स्पेन की तरफ अग्रसर की। बारस्लोना में पूरब और पश्चिम की शिल्प कला तथा भवन निर्माण बहुत मोहक थे.....यात्रा में तिलस्मी, आर्ट्स, शिल्प, वास्तुकला ओर कल्चर के समृद्ध नज़ारे देखते हुए यूनान देश पहुँच गए। रास्ते में गहरे नीले सागर के पानी को सूरज अपनी किरणों की चमक से पारदर्शी बना रहा था.....संतरों की पेड़ों की कतारें, जैतून के बाग, हरे और जामुनी अंजीर से लदे पेड़, अंगूर के वाइनवार्ड और बादाम इतयादि के सागरीय पेड़ हमने पहले कभी न देखे थे।''[11] यह कहानी पर्यटन यात्रा पर निकले दंपत्ति में

से पति की आकस्मिक मृत्यु के पश्चात नितांत अेकली पड़ गई पत्नी का अपना मानसिक संतुलन बनाए रखना, पति की अंतिम इच्छा की पूर्ति के लिए दृढ़ संकल्पित बने रहना हिन्दू विवाह के सात फेरों या वादों को यथार्थ जीवन में निभाने की मिशाल बनकर उभरता है। वह भी भारतभूमि से कोसों दूर विदेशी अनजानी ज़मीन पर, ''कितनी मुश्किल हो गई है? मूझे सोच समझकर व्यवहार करना होगा? पानी के जहाज और इम्मिग्रेशन के नियम मुझे मालूम नहीं हैं कि वे मृत शरीर को मोर्चरी में रखेंगे या जहाज से समुद्र में ही दफना देंगे? मुझे हर हाल में प्रिंस की 'विल' को पूरा करना है। यह केलव मेरा पत्नी धर्म ही नहीं बल्कि मानवता का कर्तव्य भी है कि मृत शरीर 'एनाटमी डिपार्टमेंट' में समय से पहुँच जाए। उनकी अंतिम इच्छा पूरी करने में कोई भी कमी नहीं होनी चाहिए। मैं अपनी क्षमता और पूर्ण विश्वास के साथ इस काम को करूँगी। हालाँकि ऐसा प्रतीत होता है कि मरे पक्ष में इस समय कुछ भी नहीं है। ईश्वर मुझे शक्ति प्रदान करें।''[12] दिव्या माथुर संवेदना के स्तर पर भारत की ज़मीन से गहरे जुड़ी हुई कथाकार हैं। यहीं कारण है कि वे प्रगति के रूप में आ रही 'अगति' और 'दुर्गति' को देख और दिखा पाती हैं। इनकी कहानी '2050' स्पर्म-बैंकों की सहायता से जन्म लेनेवाली संतानों की आई क्यू, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, वर्चुअल रियलिटी और अतिशय यांत्रिकता पर आधारित जिंदगी पर सवाल उठाती है। कहानी में वातावरण, चरित्र-चित्रण और संवाद पर ध्यान देने के साथ-साथ उसकी शैली पर भी फोकस किया गया है। कहानी में वातावरण, चरित्र-चित्रण ओर संवाद पर ध्यान देने के साथ-साथ उसकी शैली पर भी फोकस किया गया है। यह कहानी महिला होने के नाते जन्म देने के अधिकार और परवरिश करने के स्वतंत्र चुनावों पर केन्द्रित है। प्राकृतिक जन्म और मृत्यु पर मानव का बढ़ता हस्तक्षेप चिंताएँ उत्पन्न करती हैं। कहानी की केन्द्रीय पात्र ऋचा की चीख गढ़े जा रहे भविष्य की संतानों के प्रति एक गहरी आशंका को जन्म देती है, ''एक बच्चा पैदा करने के लिए वह भीख माँगती फिर रही है; पैदा उसे करना है, देखभाल उसे करनी है, तो ये कौन होते हैं निर्णय लेने वाले? आत्महत्या की कल्पना की गई है जिसका हश्र हिंसा और निरंकुशता की आशंका पैदा करता है।

अचला शर्मा की कहानी 'मेहरचंद की दुआ' में अवैध प्रवासियों की आशाओं-निराशाओं, सपनों-हकीकत के बीच एक तरफ हिन्दू-मुसलमान पहचान का सवाल है तो दूसरी ओर विपरीत परिस्थितयों में जीवन-रस ढूँढकर जिंदा रहने की कवायद है। कट्टर मुसलमान मेहर आलम को जब हिन्दू स्त्री नैन का साथ मिलता है तो धीरे-धीरे हिन्दू-मुसलमान की अप्राकृतिक दीवार टूट जाती है, 'सुबह जब फजली की नामज़ के लिए मेहर आलम की आँख खुली तो देखा नैन उसकी बगल में सो रही है.....उसने बस लेटे-लेटे दुआ में हाथ उठाए.....ए मेरे अल्लाह, मुझ गुनहगार बन्दे पर यह करम फरमाता रह.....आमीन सुम्मना आमीन।'[14] फिरतो पाकिस्तान में बसे अपने बीवी-बच्चों से जुड़ने, उन्हें यहाँ बुलाने या वहाँ जाने की बात पर मेहर आलम की स्थिति अस्पष्ट हो जाती है। लेकिन अब तो महर आलम का 'यही सच है'।

अनीता शर्मा की कहानी 'शुवे' चीन और भारत के सामाजिक-सांस्कतिक-पारिवारिक मूल्यों की समानताओं को संकेतिक करती सी लगती है। कहानी की मुख्य पात्र शुवे एक मल्टीनेशनल कंपनी में मैनेजर के पद पर है। उसे मोटी सैलरी मिलती है। उसे एक अदद जीवन साथी की तलाश है जो उसके माता-पिता के मापदंडों पर खड़ा उतरे। एक अमेरिकन युवा फिटनेस कोच से संपर्क पहले दोस्ती में और फिर जीवनसाथी के रूप में आकार लेने ही लगता है कि अचानक कोच क्रिस के कई अन्य महिलाओं से संपर्क का उद्‌भेदन हो जाता है। शुवे का दिल टूट जाता है। दिल टूटने, सँभलने और अपना स्वाभिमान पुनः प्राप्त करने की पूर्णता पर कहानी खत्म होती है, ''वो गुसलखाने में शीशे के सामने आ खड़ी हुई। उसकी आँखों से बहते आँसुओं के कारण उसे अपना अक्स ठीक से दिखाई नहीं दे रहा था। उसने आँखें पोंछी और फिर से अपने आप को शीशे में देखने लगी, देखा और देर तक देखती रही। उसने देखा जो शुवे उसे नजर को छुआ, क्या वो इधर भी है या सिर्फ शीशे में है? वही है, बिलकुल वैसी ही, पूरी की पूरी, कहीं से अधूरी नहीं.....चलो क्रिस का सामान इकठ्ठा करवाओ। उसका सारा समान बाँध के दरवाजे के सामने रखकर ऊपर एक बड़ा-सा चार्ट लगा दो, उस पर लिख दो.....वो अपना अधूरापन कहीं और जाकर पूरा करे। मैं शादी के बिना भी पूर्ण और आज़ाद हूँ।''[15]

उषा प्रियंवदा की कहानी 'आधा शहर' अकादमिक संस्थानों के स्त्री-विरोधी चरित्र को उद्घाटित करती है। यूनिवर्सिटी में दुस्प्रचारित इला का प्रखर और स्वतंत्रचेता व्यक्तित्व डीन को आकर्षित कर लेता है। बेहतरीन शिल्प में बंधी यह कहानी छद्भ-बौद्धिकता को मिट्टी के ढूह की तरह भरभरा कर ढहा देती है। इला कहती है, ''सच्चाई तो यह है कि जो लोग घूम-घूमकर मेरे खिलाफ प्रचार करते हैं, उन्हें मैंने कभी अपने पास फताक्न्व भी नहीं दिया। यह उनका आहत पुरुषत्व ही है, जो फैंटेसी गढ़कर.....क्योंकि मैं औरत हूँ, इसलिए? मैं अकेली हूँ, इसलिए?.....एक पुरुष पचास स्त्रियों से प्रेम करता फिरता है, उसे तुम्हारा समाज कुछ नहीं कहता? एक स्त्री अगर अकेली, सम्मान से जीना चाहती है तो चारों तरफ से गिद्ध उसे नोच खाने को तैयार रहते हैं.....और होता क्या है चरित्रहीन होना? क्या है उसकी परिभाषा? उसका सामाजिक सन्दर्भ दिया किसने है, तुम्ही पुरुषों ने न?.....यूनिवर्सिटी का जाना-माना होना कोई शराफत का पूरा सबूत तो नहीं? जो आदमी अध्यापक या स्कॉलर हो, वह लुच्चा या शोहदा नहीं हो सकता, यह कहीं लिखा है?[16] समाज के नेतृत्वकर्ता बौद्धिकों पर व्यंग्य करती यह कहानी विचार, भाव-संवेदना, परिवेश, चरित्र और संवाद की महीन बुनावट के कारण शिल्पगत प्रयोग की भी एक उत्कृष्ट कहनी है।

निष्कर्ष:

मुख़्तसर, प्रवासी हिन्दी लेखिकाओं की कहानियाँ एक विशिष्ट सौन्दर्य-बोध लिए हुए हैं। इन कहानियों ने हिन्दी कहानी को एक नई जमीन दी है, एक नया संस्कार दिया है। पारंपारित वेशभूषा और मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि से आने वाली इन कहानियों की अधिकतर मुख्य पात्र अधिकार, स्वाभिमान और चेतना संपन्न स्वावलम्बी स्त्रियाँ है। ये शोषण, दमन, अत्याचार, क्रूरता का क्रियात्मक प्रतिकार करने वाली स्त्रियाँ हैं। विदेशी भूमि पर रहने के बावजूद इन प्रवासी हिन्दी लेखिकाओं में भारतीय मूल्यों का विधान है। इनकी कहानियाँ बहुआयामी परिवेश और गहन निजी अनुभवों का गुणनफल दिखती हैं। डॉ. प्रीत अरोड़ा अपने लेख 'प्रवासी साहित्य की कहानियों में यथार्थ और अलगाव के द्वंद्व' में लिखती हैं कि, ''आज भारत में लिखी जा रही अधिकांश हिन्दी कहानी स्त्री विमर्श के नाम पर दैहिक विमर्श करती नजर आती है। जबकि प्रवासी कहानियाँ मानवीय यथार्थ के भीतर मूल्यों की तलाश करती नजारत आती है।''[17] निश्चित ही प्रवासी हिन्दी लेखिकाओं की सृजनशीलता ने हिन्दी साहित्य के फलक को नई ऊचाइयाँ दी हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. 'हिन्दी का प्रवासी साहित्य', डॉ. कमल किशोर गोयनका, अमित प्रकाशन गाज़ियाबाद,2011,पृष्ठ 47
2. भूमिका, 'हिन्दी की दुनिया, दुनिया में हिन्दी', 'इक सफ़र साथ-साथ' (कहानी संग्रह), सं. दिव्या माथुर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ 11
3. 'इस सफ़र साथ-साथ' (कहानी संग्रह), सं. दिव्या माथुर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018,पृष्ठ 336-37
4. वही, पृष्ठ 55
5. वही, पृष्ठ 357
6. वही, पृष्ठ 368
7. वही, पृष्ठ 286
8. वही, पृष्ठ 214
9. वही, पृष्ठ 218
10. वही, पृष्ठ 218-19
11. वही, पृष्ठ 134
12. वही, पृष्ठ 137
13. वही, पृष्ठ 112
14. वही, पृष्ठ 47
15. वही, पृष्ठ 70-71
16. वही, पृष्ठ 317-18
17. himalin.com/himalininews/प्रवासी-साहित्य-की कहानी html?source=refresh

✦✦✦